श्रीमद्वभगवद् गीता – सर्वधर्मसामंजस्य एवं सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याणमार्ग

***डॉ. सुमन यादव**

भारतीय परम्परा में गीता को दर्शन ग्रंथ की अपेक्षा धर्मग्रंथ के रूप में अधिक मान्यता मिली है। धर्म एक ऐसी प्रबल कड़ी है जो किसी भी राष्ट्र के नागरिकों की भावनाओं को एक सूत्र में पिरोती है। सामान्य लोगों को आप्तवचन की अधिकांश अपेक्षा रहती है परंतु बौद्धिक स्तर पर उन्नत, मानसिक चिंतनशील व्यक्तियों को तर्क युक्तियों के विश्लेषण द्वारा प्रतिपादित एवं प्रतिष्ठापित वस्तुतत्व की गवेषणा लगी रहती है। परंतु उससे भी परे जो अलौकिक तत्व है उसमें न किसी प्रामाणिकता की आवश्यकता रहती है और न किसी तार्किक पद्धति की। क्योंकि उसके साक्षात् एवं सम्पूर्ण निरूपण के लिये तो उपनिषदों तक ने अपनी असमर्थता प्रकट की, अतः उसी अनिर्वचनीय रूप को मानते हुये भारतीय लोगों का गीता के प्रति दृष्टिकोण सम्पूर्ण रूप से धार्मिक है।

यदा किंचितज्ज़ोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्,
तदा सर्वज्ञोऽस्मत्यिभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किंचिततिंकविद् बुधजनसकाशादवगतम्ः
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।।

अर्थात् जब मैं कुछ–कुछ जानने लगा तो मदान्ध हाथी की भाँति होकर स्वयं को सर्वज्ञ मानने लगा, परंतु जैसे–जैसे प्रबुद्धतर व्यक्तियों के पास जाना शुरू हुआ तो ज्वर की भाँति मेरा गरूर (अभिमान) टूट गया और पता चला कि मैं तो मूर्ख हूँ।

गीता के अंतर्गत प्रकृति (परा, अपरा), पुरूष आत्मा मन इत्यादि शब्दों के अर्थ स्वतंत्र रूप में परिणत होते हैं, यही कारण है कि द्वैतादिमत प्रवर्तको को उनमें अपने–अपने अर्थ की प्रतिपादकता दिखाई देती है तथा वे स्वमत निरूपण में गीता की प्रामाणिकता का उपस्कार करते जाते हैं। आचार्यों ने गीता में अपने–अपने आशयानुसार–ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग, कर्ममार्ग एवं योगमार्ग का अन्वीक्षण किया, परंतु गीता किसी एक मार्ग विशेष की ही प्रतिपादिका नहीं है। वह चारों पहलुओं को लेकर चलती है। ''ज्ञान की नाव के द्वारा व्यक्ति पापपुण्य के पार पहुँच जाता है। तथा ज्ञान रूप अग्नि सभी कर्मों को भस्मतात् कर देती है''–इस प्रकार कहकर कृष्ण साथ के साथ योग की महिमा बताते है कि – योग के परिपाक द्वारा मनुष्य ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। किंतु योग की महिमा का बखान करते ही कर्म के बारे में तथा उसकी प्रबलता को बताते है कि – ''कर्मण्येवाधिकारस्ते'' तथ यह भी बताते है कि कर्म तो अवश्यंभावी है। इन तीनों के बारे में कहते ही भक्ति के बीज रूप श्रद्धा का भी उपन्यास करते हैं कि – श्रद्धावान् ज्ञान को प्राप्त करता है। परमशक्ति को पाता है। इतना सब कुछ व्यामोहक रूप से कह देने के बाद निश्चित है कि – जिज्ञासु लोग इन सबमें अन्योन्या भाव सम्बन्ध का निष्कर्ष निकाल लेंगे, परन्तु ऐसा भी नहीं है क्योंकि कृष्ण ने योगी की महिमा का उत्कृष्टतम वर्णन किया है कि तपस्यिों में, ज्ञानियों में तथा कर्मपरायणों में इन सबमें योगी बड़ा माना जाता है। अब यदि प्रकृति प्रत्यवादि के दृष्टान्त का आश्रय लेकर ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग का विभाकर कर दिया जाये तो इतने पर भी कृष्ण कौतूहल को और अधिक बढ़ा

देते है कि – 'योगः कर्मसु कौशलम्' अर्थात कर्मों में योग – कौशल रूप है। फिर अन्यत्र कहते है कि – मैं भक्तों के हृदयों में ही निवास करता हूँ।

भारतीय ग्रंथ होने के कारण यह भारतीयों के ही कल्याण का मार्ग है। ऐसा नहीं है; क्योंकि इसमें प्रतिपादित सिद्धांत एवं सत्य एक देशी नहीं है अपितु सार्वभौमिक है। सार्वभौमिकता वह दृष्टि है जो दूर स्थिति को भी समानिकटता में परिवर्तित कर देती है। शाश्वत जीवन–दर्शन के अंतर्गत मानव–कल्याण के जो साधन बताये गये हैं उन्हीं का नाम विद्वानों ने पराविद्या अध्यात्मविद्या अथवा ब्रह्मविद्या रख दिया। गीता उसी विद्या का प्रत्यङनिर्देशन करते हुये सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण मार्ग प्रस्तुत करती है। विख्यात विदेशी विद्वानों ने भी गीता में दार्शनिकता एवं आधयात्मिकता का जो दर्शन सुख प्राप्त किया, वह इस तथ्य की पृष्टि के लिये पर्याप्त प्रमाण है। जर्मन धर्म के अधिकृत भाष्यकार Sir J.W. Hower ने गीता से प्रभावित होकर मुक्तकण्ठ से इसकी अनश्वरताको स्वीकार करते हुये विश्वकल्याण की प्रतिपादिनी बताया है। Cristopher Ishirwood ने भी ऐसे ही विचार रखे हैं।

अब वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, इसके बारे में थोड़ा स्वतंत्र चिंतन करते हैं कि –मानव जाति का कल्याण मार्ग क्या है? आज जहाँ विश्व में विश्वयुद्ध की आशंका के बादल घिरे हैं – वहां विश्व के धर्मगुरूओं सत्य, अहिंसा, प्रेम एवं विश्वबधुंता को परकल्याण एवं सुरक्षा का मार्ग बताया है और इस मार्ग को सभी ने एकमत से माना भी है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो विश्वयुद्ध को टालने के भरसक प्रयास किये जा रहे है तथा धर्म की शिरोमान्यता की ओट लेकर अनेक विश्व सम्मेलन भी आयोजित हो रहे है। दूसरी ओर दृष्टि डाले तो हमें महाभारतकाल का स्मरण होगा। जब अर्जुन रणभूमि में रणोद्यत होकर उतरा तो उसके मन में आत्मीयों के प्रति प्रेम उमड़ा, उनके वद्य को करने में उसने हिंसा के दर्शन किये, इससे बड़ी उदारता और क्या होगी कि वह राज्य तक छोड़ने को तैयार हो गया, क्योंकि युद्ध में भावी महाविनाश उसकी परिकल्पना से परे नहीं था, वह जानता था कि युद्ध होगा तो विनाश भी अवश्य होगा। यदि उसे डरपोक कहा जाये तो भी बात ठीक नहीं क्योंकि उसे अपने मरण की चिंता नहीं थी वह तो आत्मीयों की भावी मृत्यु से भीरू बन गया था। उसने बिना युद्ध स्वयं निःशस्त्र होकर, प्रतिक्षियों के द्वारा मारे जाने वाली परिकल्पना को भी सहज ढंग से स्वीकार करते हुये भय नहीं खाया। स्पष्ट है कि यदि अर्जुन युद्ध छोड़ने के विचार को बाद में भी न छोड़ता तो युद्ध होता भी नहीं। किसी भी प्रकार की समर्पण संधि आदि से सारा उपक्रम शांत हो जाता। यह बात भी बिल्कुल स्पष्ट है कि गीता का उपदेश कृष्ण ने अर्जुन को जिस प्रयोजन से दिया था वह प्रयोजन केवल और केवल युद्ध के लिये उसे प्रेरित करना था। 'युद्ध की अपेक्षा ज्ञान (आध्यात्मिकादि) देने के लिये आदेश दिया' यह बात भी उचित नहीं जान पड़ती क्योंकि आज के प्रचण्डगतिशील मनोवैज्ञानिक युग में यह तथ्य स्पष्ट हो चुका है कि जो जितना बुद्धिमान होता है उसकी बुद्धि को स्थिराश्रय के लिये उतनी ही तर्कशक्ति से उसे समझाना पड़ता है। अर्जुन ने युद्ध न करने हेतु प्रबल तर्क–निमित्तादि उपस्थित कर दिये थे, कृष्ण यदिइतना उपदेश न करते तो अर्जुन की बुद्धि का स्थिराश्रित होना सम्भव न था। अर्थात् गीता के उपदेश का मुख्य प्रयोजन युद्ध की प्रेरणा देना था। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' से अधिक प्रबल प्रमाण इतिहास नहीं दे सकता।

अब हम अपने वर्तमान बिंदु पर आते है कि –युद्ध का प्रकरणचलने पर अहिंसा प्रेम आदि की चर्चा का औचित्य

कहाँ तक है? एक अत्यन्त कटु सत्य यह भी है विश्व एंव प्रकृति का संतुलन बनाये रखने के लिये युद्ध की महत्वपूर्ण भूमिका है। हम केवल स्वयं की ओर ही दृष्टि जमाये हुये सम्पूर्ण विश्व के दृष्टान्तों से अनभिज्ञ होने का स्वाँग नहीं रच सकते है स्पार्टा एवं स्थेन्स की विश्व प्रसिद्ध संस्कृति एवं सभ्यता प्रमाण है–जहाँ पर कृशता के नाममात्र को भी कलंक माना जाता था। राष्ट्र के प्रति जन्म से ही यह समर्पण प्रशसंनीय है आदिकाल से चले आ रही शक्ति–संक्रान्ति का नियम यदि आज भी लागू हो तो क्या आश्चर्य? मानव आज भले जितना भी सुसभ्य शिक्षित एंव सुसंस्कृत क्यों न हो दूसरे पर प्रभावी होने की उसकी प्राकृतिक प्रवृत्ति का अंत भला कौन करेगा।? स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो प्राणी (विशेषकर मानव) अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिये क्षण–प्रतिक्षण संघर्ष करता है इतिहास बनाता है और चला जाता है। प्रत्येक के स्वाभाविक क्षेत्र विभिन्न होते है, जिनमें यदि उत्कृष्टतम लक्ष्य पा लिया जाये तो दूसरे लोगों के लिये यह मानव प्रेरणा बन जाता है।

गीता बिल्कुल सरल सीधे शब्दों में कहती है कि – किसी अन्य के गुण धर्मों के साक्षेप होने के होड़ में स्वयं के गुणधर्म को कदापि–कदापि नहीं छोड़ना चाहिये। क्योंकि उभयविधमार्ग अनिष्टकारी होता है। गीता ने जितनी भी ज्ञान की बाते एवं तथ्य बताये है वे सब इस स्वधर्मनिष्ठा के निरूपण के पश्चात् ही कहे गये है।

आशय यह है कि गीता का प्रतिपाद्य जटिल तत्त्वों के विश्लेषण से आक्रांत नहीं है जो केवल धुरन्धराचार्यों द्वारा ही ग्रहणीय हो अपितु सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण मार्ग हैं, शर्त यह है कि व्यक्ति ज्ञानवंदुर्विग्ध न होना चाहिये।

***असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास विभाग)**
एस.एस.जैन सुबोध पी.जी. कॉलेज, जयपुर

संदर्भ ग्रंथ

1 धर्मो धारयते प्रजाः–मनुस्मति
2 The Nature of Human Intelligence - J.P.Guilford
The Structure of Intellect-M.N. Meeker
Intelligence and Its theories- From Advanced psychology By. Dr. S.S. Chauhan
3 यत्रददृश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णम्, अचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः। –मुण्डकोपनिषत् 1.16
4 नीतिशतमकम्–भर्तृहरिः
5 प्रकृतिरिकत मूल प्रकृतिर्लक्षणया–शंकराचार्यः
प्रकृतिः पराऽपरेति रूपद्वयोपाश्रया भिन्ना–रामानुजाचार्यः
पुरूषः इतिह क्षराऽक्षराऽव्यरूपः–विद्यावाचस्पतिमिश्रः

AIJRA Vol.I Issue I www. ijcms2015.co ISSN 2455-5967

मनस एवं प्रकृतिग्राईया–मधुसूदन सरस्वती
6 सर्वज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि–गीता 4.36
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरूते तथा–4.37
7 तत्स्वयं योगसंसिद कालेनाम्तनि विन्दति।–गीता 4.38
8 श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः प्रयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्ति माचिरेणाधिगच्छति।।
9 तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञान भ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भगर्जुन।गीता–6.46
10 नापिकेवलना प्रकृतिः प्रयोक्तव्या नापि केवलः।–पातंजल महाभाष्यम्
11 गीता हमें सब कालों एवं सब धर्मों एवं धार्मिक जीवन के लिए प्रमाणिक, गम्भीर अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। गीता में कर्मदर्शन आत्मा के दर्शन के रूप में निरूपित है। Sir J.W. Hower Hibbert Gernal P. 341
12 गीता शाश्वत जीवन के कभी भी रचे गये सबसे स्पष्ट और सबसे सर्वाग्डपूर्ण सारांशों में से एक है, इसलिए न केवल भारतीयों के लिये अपितु समपूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिये इसका स्थायी मूल्य है। Cristopher of Shirwood and Swami Pronanand Geeta-Preface.
13 एतान्न हन्तुमिच्छामि ध्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं तु महीकृत।। गीता 1–35
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव। गीता 1–37
14 न चैतद्विद्यः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽचस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः।। गीता 2.6
15 धर्म्याद् हि युद्धात श्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते। गीता–2.31
16 A Super proficient mind requires thorough elaboration-Essentials of Psychological Testing : J, Lee Croanbach.
17 Wars play in important role to maintain the natural process-Population Explosion : Dr. V. Sudhonshuman.
18 History of Greek and Rome : - Larrish Dominiqunan
Viz Weck infants were killed in the name of native power.
19 Humanbeing initially, however desires to lord everyone into its indulgence. frued.
20 Darwinism.
21 यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः–गीता
22 स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। गीता 3.35
23 अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमासध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुविग्धं ब्रह्मापि तं नरं नरंजयति।।– नीतिशतकम्ः भर्तृहरि

श्रीमद्वभगवद् गीता – सर्वधर्मसामंजस्य एवं सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याणमार्ग
'डॉ. सुमन यादव